4

धर्मशास्त्रीय राजधर्म की वैश्विक उपादेयता

डॉ. अमिता सिंह
वरिष्ठ सहायक आचार्य- संस्कृत
सा.बा.फु. राज. स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
चकिया, चन्दौली, उत्तरप्रदेश।
Singhamita1984@gmail.com

सारांश-

धर्म शास्त्रीय राज धर्म प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रों में वर्णित शासन-व्यवस्था का मूलभूत सिद्धान्त है, जो राजा या शासक के कर्तव्यों को धर्म, नैतिकता और सामाजिक न्याय के आधार पर परिभाषित करता है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, कौटिलीय अर्थशास्त्र, कामन्दकीय नीतिसार और महाभारत जैसे ग्रन्थों में राजशास्त्र को 'धर्मराज्य' की अवधारणा के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जहाँ शासक को प्रजा की रक्षा, न्याय की स्थापना और लोक कल्याण का दायित्व प्रदान किया जाता है। राज धर्म के मूल सिद्धान्तों में धर्म (नैतिकता), अर्थ (आर्थिक समृद्धि), काम (इच्छा सन्तुष्टि) और मोक्ष (आध्यात्मिक मुक्ति) का सन्तुलन सम्मिलित है। यद्यपि राज धर्म की वैश्विक उपादेयता में चुनौतियाँ भी हैं। प्राचीन शास्त्रों में वर्ण-व्यवस्था और राजा की निरंकुशता के तत्त्व आधुनिक समानता और लोकतन्त्र से टकराते हैं। तथापि, इसके सार्वभौमिक सिद्धान्त, जैसे- न्याय, करुणा और दायित्व को अनुकूलित कर वैश्विक शासन में लागू किया जा सकता है। उदाहरण के लिए- अन्ताराष्ट्रिय न्यायालय में राष्ट्रों के मध्य विवाद सुलझाने की प्रक्रिया राजध र्म की 'धर्मयुद्ध' अवधारणा से प्रेरित प्रतीत होतीहै, जहाँ युद्ध अन्तिम विकल्प होता है। स्पष्टतः राजधर्म न केवल प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन की धरोहर है, अपितु आधुनिक वैश्विक शासन के लिए भी प्रासंगिक और मार्गदर्शक नैतिक दृष्टि प्रस्तुत करता है।

बीजशब्द- धर्मशास्त्र, राजधर्म, अष्टलोकपाल, मण्डल-सिद्धान्त, षाड्गुण्यनीति, उपायचतुष्टय, न्याय-विधान, दण्ड-विधान। भारतीय ज्ञान परम्परा में धर्म, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र-व्यक्ति, समाज और राज्य का मूल नियामक सिद्धान्त रहा है। धर्म का तात्पर्य वह नहीं जो आज संकीर्ण अर्थों में गृहीत है, अपितु वह व्यापक नैतिक, सामाजिक और कर्तव्य परक व्यवस्था

©Indira Gandhi National Open University

है, जो समाज को धारण करे। धर्म में अपार शक्ति है, वह अभ्युदय एवंनिःश्रेयस दो प्रकार की उन्नति प्रदान करता है और मानवता का विकास करताहै। महाभारत के कर्ण पर्व में कहा गया है कि धर्म से ही प्रजा का धारण व संरक्षण होता है-

"धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मोधारयतेप्रजाः।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तः सधर्मइतिनिश्चयः।।"(1)

इसी व्यापक धर्म की राजनैतिक अभिव्यक्ति राज धर्म के रूप में विकसित हुई। धर्म का विवेचन करने वाले धर्मशास्त्र किसी समाज या व्यक्ति के लिए उचित आचरण, नीति, सदाचार और विधि-विधानों का वर्णन करने हेतु विख्यात हैं।इसके अर्न्तगत स्मृतियाँ, पुराण, सूत्रग्रन्थ, रामायण, महाभारत आदि को सम्मिलित किया जाता है।इनमें व्यक्ति तथा समाज की आचरण-संहिता रूप राजधर्म, राजशास्त्र, अर्थशास्त्र, दण्डनीति, नीति शास्त्र आदि का विकास भारत में धर्मानुप्राणित है। अर्थात्धर्म शास्त्र के ही अर्न्तगत राजनीति का विवेचन किया गया है।पाश्चात्य विद्वानों का मानना है कि धर्म प्राधान्य होने के कारण भारतीय जनमानस राजनैतिक विचारों से अवगत नहीं था। यह विचार वस्तुतः अज्ञानता व दोषपूर्ण मूल्यांकन पर आधारित है।सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्राचीन भारत में राजनीति को धर्म शास्त्र का अंग मानने के कारण तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों को भी धर्मानु शासन के अन्तर्गत रखा गया। अतःइन सिद्धान्तों को धर्म की प्रतिष्ठा प्राप्त थी तथा व्यक्ति अथवा राज्य द्वारा उनका उल्लंघन धर्मविरूद्ध एवं नैतिकता के विरुद्ध कार्य माना जाता था।अतःप्राचीन भारत में राजधर्म के पीछे धर्म की सशक्त अनुशस्ति विद्यमान थी।

धर्म शास्त्रीय साहित्य में राजधर्म को शासन का केन्द्रीय नैतिक सिद्धान्त माना गया है। महाभारत के शान्ति पर्व में राजधर्म का अत्यन्त व्यापकच गहन विवेचन प्राप्त होता है। महाभारत में भीष्म पितामह कहते हैं कि सभी धर्मों में राजधर्म श्रेष्ठ है, क्योंकि इसके द्वारा समाज के सभी वर्गों की सुरक्षा वव्यवस्था सम्भव होती है-

"सर्वेधर्माराजधर्मप्रधानाः सर्वेधर्मापाल्यमाना भवन्ति।
सर्वस्त्यागोराजधर्मेषुराजस्त्यागंधर्मंचाहुरग्र्यंपुराणम्।।"(2)

यद्यपि कौटिलीय अर्थशास्त्र यथार्थवादी राजनीति का ग्रन्थ माना जाता है, तथापि उसमें भी राजधर्म की केन्द्रीयता स्पष्ट है। प्राचीन भारतीय राज्य-दर्शन में राज्य को मात्र शक्ति, दण्ड या प्रभुत्व की संरचना नहीं, अपितु उसे

©Indira Gandhi National Open University

एक नैतिक संस्था के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। शासक को निरंकुश सत्ता का स्वामी न मानकर उसे धर्म के अधीन एक उत्तरदायी सेवक माना गया है। विदुर नीति में कहा गया है कि जो राजा नेत्र, मन, वाणी तथा कर्म इन चारों को प्रसन्न करता है, उसी से प्रजा प्रसन्न रहती है। जैसे व्याध से हरिन भयभीत रहता है, उसी प्रकार जिससे समस्त प्राणी डरते हैं, वह समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का राज्य प्राप्त कर भी प्रजा जनों द्वारा त्याग दिया जाता है। अन्याय में स्थित हुआ शासक पैतृक राज्य प्राप्त करके भी अपने ही कर्मों से उसे भ्रष्ट कर देता है, जैसे वायु मेघ को छिन्न-भिन्न कर देती है।परम्परा से सज्जन पुरुषों द्वारा किये हुए धर्म का आचरण करने वाले राजा के राज्य की पृथ्वी धन-धान्य से पूर्ण होकर उन्नति को प्राप्त होती है तथा ऐश्वर्य की वृद्धि होती है।जो राजा धर्म का परित्याग तथा अधर्म का अनुष्ठान करता है, उसकी राज्य भूमिअग्निपररखेचर्मकीभाँतिसंकुचितहोजातीहै-

“चक्षुषामनसावाचाकर्मणाचचतुर्विधम्।
प्रसादयतियोलोकंतंलोकोऽनुप्रसीदति।।
यस्मात्त्रयस्यन्तिभूतानिमृगव्याधान्मृगाइव।
सागरान्तामपिमहींलब्ध्वासपरिहीयते।।
पितृपैतामहंराज्यंप्राप्तवान्स्वेनकर्मणा।
अथसंत्यजयोधर्ममधर्मंचानुतिष्ठतः।
प्रतिसंवेष्टतेभूमिरग्नौचर्माहितंयथा।।”(3)

इसीप्रकारमहाभारतकेशान्तिपर्वमेंभीष्मद्वारायुधिष्ठिरकोउपदेशितराजधर्ममें यहप्रतिपादितकियागयाहैकिराजाकापरमकर्तव्यप्रजाकेसुखकोसर्वोपरिरख नाहै- ‘प्रजासुखेसुखंराज्ञः’(4) यहदृष्टिराज्यकोनैतिकउत्तरदायित्वोंसेयुक्तसंस्थाकेरूपमेंस्थापितकरतीहै।

राजधर्मकीसंकल्पनाकामूलएवंकेन्द्रीयआधारन्यायहै।भारतीयधर्मशास्त्रीयपरम्परामेंन्यायकोमात्रविधिकप्रक्रियानहीं, अपितु शासन की नैतिक आत्मा माना गया है। शासन को धर्म संगत बनाये रखने के निमित्त न्याय को अनिवार्य तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है।मनुस्मृति के अनुसार समुचित दण्ड-व्यवस्था के अभाव में राज्य का व्यवस्थित रूप से संचालन सम्भव नहीं है।दण्ड सभी प्रजाओं को कर्तव्याऽकर्तव्य का उपदेश देता है, दण्ड ही सभी ओर से रक्षा करता है, लोगों के सोने पर भी दण्ड जागता रहता है, विद्वान्लोग दण्ड को ही धर्म के रूप में जानते हैं-

©Indira Gandhi National Open University

"दण्डः शास्तिप्रजाः सर्वादण्डएवाऽभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषुजागर्तिदण्डंधर्मंविदुर्बुधाः।।"(5)

इस विचार के साथ आचार्य यह भी स्पष्ट करते हैं कि यह दण्ड निरंकुश नहीं होना चाहिए, उसे धर्म, विवेक और जन कल्याण की भावना द्वारा नियन्त्रित होना आवश्यक है।क्योंकि सभी पक्षों में ध्यान देकर अच्छी तरह प्रयुक्त करने पर दण्ड सभी प्रजा को प्रसन्न करता है। इसके विपरीत सभी पक्षों मेंध्यान न देकर अनुचित रूप में प्रयुक्त करने पर तो दण्ड सभी ओर से विनाश ही करता है। इस आशय को स्पष्ट करने के लिए राजर्षि मनु ने अत्यन्त रोचक उदाहरण दिया है कि- 'यदि राजा जागरुक होकर अन्याय करने वाले दण्डनीय जनों को दण्ड नहीं देता तो जैसे मनुष्य मछलियों को लोहे की सलाख में पकाते हैं वैसे की बलवान्मनुष्य दुर्बल मनुष्यों को पकाते हैं-

"समीक्ष्यसधृतः सम्यक्सर्वारंजयतिप्रजाः।
असमीक्ष्यप्रणीतस्तुविनाशयतिसर्वतः।।"
"यदिनप्रणयेद्राजादण्डंदण्ड्येष्वतन्द्रितः।
शूलेमत्स्यानिवाऽपक्ष्यन्दुर्बलान्बलवत्तराः।।"(6)

महाभरत में न्याय को राजधर्म का प्राण कहा गया है।शान्ति पर्व में भीष्म युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए कहते हैं कि राजा का प्रथम कर्तव्य न्यायपूर्ण शासन है, क्योंकि अन्याय पूर्ण राजा शीघ्र ही राज्य और धर्म दोनों को नष्ट कर देता है-

"मज्जेत्त्रयीदण्डनीतौहतायांसर्वेधर्माः प्रक्षयेयुर्विबुद्धाः।
सर्वेधर्माश्चाश्रमाणांहताः स्युः क्षात्रेत्यक्तेराजधर्मेपुराणे।।"(7)

रामायण में श्रीराम के शासन में न्याय की अवधारणा आदर्श रूप में प्रतिपादित है। उसमें राजा और राज्य में कोई विशेष अन्तर प्रतीत नहीं होता है। वाल्मीकि के अनुसार राजा का प्रमुख कर्तव्य धर्म पालन व प्रजा-रक्षण है। रामायण में अनेक स्थलों पर इसका विवेचन मिलता है।उदाहरण के लिए- ऋषि विश्वामित्र राक्षसी ताड़का का वध करने हेतु राम से परामर्श देते हुए कहते हैं कि- 'नरोत्तम! स्त्री का वध करने में तुम घृणा मत करो, चातुर्वर्ण्य के हित के निमित्त तुम्हें इसका वध करना ही होगा। सदा प्रजा-रक्षण में तत्पर राजा को चाहिए कि वह दूसरे काल में क्रूर समझे जाने वाले कर्म को प्रजा की रक्षा हेतु अक्रूर समझकर करे, क्योंकि जिन्हें राज्य का भार सौंपा गया है, उनके लिए यह वेदोक्त धर्म है-

"नहितेस्त्रीवधकृतेघृणाकार्यानरोत्तम।

चातुर्वर्ण्यहितार्थंहिकर्तव्यंराजसूनुना।।17।
नृशंसमनृशंसंवाप्रजारक्षणकारणात्।
पातकंवासदोषंवाकर्तव्यंरक्षतासदा।।18।
राज्यभारनियुक्तानामेषधर्मः सनातनः।
अधर्म्यांजहिकाकुत्स्थधर्मोह्यस्यांनविद्यते।।19'।(8)

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त में 'रूल ऑफ लॉ' की अवधारणा जिसमें कानून की सर्वोच्चता, समानता और निष्पक्षता पर बल दिया जाता है को राज धर्म की ही आधुनिक अभिव्यक्ति मान सकते हैं। संवैधानिक सर्वोच्चता, स्वतन्त्र न्यायपालिका और कानून के समक्ष समानता जैसे सिद्धान्त आधुनिक लोकतान्त्रिक राज्यों में न्याय की ही आधार शिला हैं। ये तत्व स्पष्टतया धर्मशास्त्रीय राजनीतिकसिद्धान्तों से साम्य रखते हैं, जहाँ राजा धर्म और न्याय से बंधा हुआ होता है।

राजधर्म की मूल प्रवृत्ति लोककल्याण अथवा लोक संग्रह है।भारतीय धर्मशास्त्रीय परम्परा में राज्य का अन्तिम लक्ष्य सत्ता का विस्तार नहीं, अपितु प्रजा के सुख, सुरक्षा तथा समग्र विकास को सुनिश्चित करना माना गया है। महाभारत के अनुसार जिसमें धर्म विराज रहा हो, उसी को राजा कहते हैं- 'यस्मिन्धर्मोविराजे ततंराजानंप्रचक्षते'(9)।राजा पापों को भस्म करने के कारण 'पावक', दूतों द्वारा सबके कार्यों का पता लगाने के और प्रजाजनों के मंगलकारी कार्यों को करने के कारण 'भास्कर', तीक्ष्ण दण्ड से अधर्मियों का निग्रह और धर्मात्माओं पर कृपा प्रकाशित करने से 'यम' तथा धन से उपकारियों को तृप्त तथा अपकारियों को नष्ट करने से 'वैश्रवण' नाम से विख्यात होता है।अतः राजा को स्वयं भोग-विलास से अधिक प्रजा ही आवश्यकताओं पर ध्यान देना चाहिये। अन्याय से मुक्त समाज की रचना ही आदर्श शासन का लक्ष्य है। कौटिल्य यह स्पष्ट चेतावनी देते हैं कि यदि शासक अच्छे गुणों वाला नहींहै, तो सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने अधिकार में किये जाने के बावजूद भी नाश को प्राप्त हो जायेगा। वे इस विषय पर अनेक शासकों के उदाहरण देते हैं, जैसे- भोजवंशीय राजा दाण्डक्यकामवश ब्राह्मण कन्या का अपहरण करने के अपराध में उसके पिता के शाप से सपरिवार और सराज्य नष्ट हो गये।यही गति विदेह देश के शासक कराल की भी हुई। क्रोधवश राजाजनमेजय भी ब्राह्मणों से कलह कर बैठा और उनके शाप से नष्ट हो गया। इसी प्रकार भृगुवंशियों से कलह करने पर तालजंघ की भी दुर्गति हुई। लोभाभिभूत होकर इला का पुत्र पुरुरवा, चारों वर्णों से अत्याचार पूर्वक धन का अपहरण करने के कारण, उनके अभिशाप से मारा गया। यही

©Indira Gandhi National Open University

दशा सौवीर देश के शासक अजबिन्दु की भी हुई। अभिमानी रावण परस्त्री-अपहरण के अपराध से तथा दुर्योधन अपने भाइयों को राज्य का भाग न देने के अन्याय से मारे गये। मदोन्मत्त राजा डम्भोद्भव अपनी प्रजा का तिरस्कार करता रहा, अन्ततः नर-नारायण के साथ युद्ध करते हुए वह भी विनाश को प्राप्त हुआ। इसी कारण है हयराज परशुराम के हाथों मारा गया। किन्तु अम्बरीशत थानाभाग जैसे जितेन्द्रिय व गुणसम्पन्न राजाओं ने चिरकाल तक पृथिवी का निष्कण्टक राज्य भोगा। (10) आधुनिक राजनीतिक चिन्तन में वेलफेयर स्टेट की अवधारणा-जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, गरीबी उन्मूलन और समावेशी विकास पर बल दिया जाता है, यह राजधर्म की हीआधुनिक अभिव्यक्ति प्रतीत होती है।

धर्मशास्त्रों में राजधर्म का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष दुर्बल और वंचित वर्ग की रक्षा है। जहाँ राजा को मात्र शक्तिशाली वर्गों का संरक्षक नहीं अपितु समाज के सभी सदस्यों- स्त्रियों, बालकों, वृद्धों, निर्धनों, रोगियों और आश्रयहीनों का रक्षक माना गया है। मनु ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि राजा को न्याय-प्रणाली के माध्यम से निर्बलों की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि यही धर्म का वास्तविक स्वरूप है-

“बालदायादिकंरिक्थंतावद्राजाऽनुपालयेत्।
यावत्सस्यात्समावृत्तोयावच्चाऽतीतशैशवः।।27।
वशाऽपुत्रासुचैवस्याद्रक्षणंनिष्कुलासुच।
पतिव्रतासुचस्त्रीषुविधवास्वातुरासुच।।28’।(11)

धर्मशास्त्र के अनुसार जिस राज्य में निर्बल सुरक्षित नहीहैं, वहाँ धर्म का क्षय हो जाता है। राजा का दायित्व है कि वह शक्ति-सन्तुलन को न्याय के पक्ष में बनाये और अत्याचार से पीड़ित जनों की रक्षा करे। यहाँ अधिकारों को किसी वैधानिक घोषणा के रूप में नहीं, अपितु नैतिक दायित्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो आधुनिक मानवाधिकार-चिन्तन से गहन साम्य रखता है। कौटिल्य भी समाज के निर्बल वर्गों की सुरक्षा पर विशेष बल देते हैं। उन्होंने विधवाओं, अनाथों, वृद्धों और आपदा ग्रस्त नागरिकों के लिए राज्य-समर्थन की व्यवस्था को राजा का कर्तव्य बताया है। यह व्यवस्था आधुनिक सामाजिक आधिकारों और राज्य-प्रायोजित संरक्षण की अवधारणा का पूर्व रूप मानी जा सकती है। आधुनिक ह्यूमन राइट्स डिसकोर्स में मानव-गरिमा, समानता, स्वतन्त्रता और न्याय को सार्वभौमिक मूल्य माना गयाहै, जैसा कि यूनिवर्सल डिक्लयरेशन ऑफ ह्यूमेन राइट्स(1948) में

Volume 5, Issue 1, 2026, p.36- 46, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

प्रतिपादित है। राजधर्म की अवधारणा इन मूल्यों को सहस्र वर्ष पूर्व नैतिक शासन के अंग के रूप में स्थापित कर चुकी थी।

धर्मशास्त्रीय परम्परा में युद्ध को शासन का सहज या प्राथमिक साधन नहीं, अपितु उसे अन्तिम और अनिवार्य विकल्प के रूप में स्वीकार किया गया। मनुस्मृति, कामन्दक नीति सार, महाभारत में अनेकस्थलों पर युद्ध-त्याग का सन्देश दिया गया है-

"विजेतुंप्रयतेतराऽरीन्नयुद्धेनकदाचन।"(12)

"नाशोभवतियुद्धेनकदाचिदुभयोरपि।"(13)

"वर्जनीयंसदायुद्धंराज्यकामेनधीमतां।"(14)

महाभारत में यह प्रसंग प्राप्त होता है कि युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व पाण्डवों की ओर से शान्ति वार्ता हेतु श्रीकृष्ण शान्तिदूत के रूप में भेजे गये थे। शान्तिवार्ता की विफलता के पश्चात्ही युद्ध की घोषणा की गयी थी। इस हेतु धर्मशास्त्रों में मण्डल-सिद्धान्त, षाड्गुण्य नीति, उपाय चतुष्टय का मार्ग प्रदर्शित किया गया है-

"मण्डलंचिन्तयेन्मुख्यंराजाद्वादशराजकम्।"(15)

मण्डल-सिद्धान्त का प्रणेता वास्तव में उशनस् अथवा शुक्राचार्य को माना जाता है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन शक्ति-सन्तुलनार्थ किया गया है, जो विविध राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को निर्धारित करता है। इसके अर्न्तगत चार प्रकार के राज्यों का चित्रण किया गया है। इन घटक राज्यों में प्रत्येक राज्य का एक अलग राज्य मण्डल बनता है। विजिगीषु, उसका मित्र तथा उसके मित्र का मित्र राजा, ये तीनों राज्य की तीन प्रकृतिक हलाते हैं। इन तीनों राज्यों में से प्रत्येक राज्य की छः छः प्रकृतियाँ- राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष तथा दण्ड मिलकर अठारह प्रकृतियों का एकराज मण्डल बनता है। उसी प्रकार अरिमण्डल, मध्यम मण्डल तथा उदासीन मण्डल बनते हैं। इस प्रकार एक वृहद राज्य मण्डल की रचना हो जाती है-

"अमात्य राष्ट्र दुर्गाऽर्थ दण्डाऽऽख्याः पंचचाऽ पराः। प्रत्येकं
कथिताह्येताः संक्षेपेणद्विसप्ततिः।"(16)

मण्डल-सिद्धान्तषाड्गुण्य (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव) एवं उपायों (साम, दान, दण्ड, भेद) के नीति-निर्धारण में प्रयोग करने हेतु एक सैद्धान्तिक विचार प्रस्तुत करता है। मण्डल-सिद्धान्त की प्रासंगिकता कई सन्दर्भों में आज भी परिलक्षित होती है। पड़ोसी देशों के मध्य शत्रुवत्सम्बन्ध

©Indira Gandhi National Open University

आज भी दृष्टिगोचर होते हैं। भारत-चीन सम्बन्ध, भारत-पाकिस्तान सम्बन्ध, भारत-बांग्लादेश सम्बन्ध इसके स्पष्ट उदाहरण हैं।

निष्कर्ष-उपरोक्त विमर्श से यह स्पष्ट होता हैकि धर्मशास्त्रीय परम्परा में प्रतिपादित राजधर्म मात्र प्राचीन भारतीय राज्य-व्यवस्था का सिद्धान्त नहीं, अपितु वह एक सार्वभौमिक और कालातीत नैतिक शासन दर्शन प्रस्तुत करता है। राजधर्म का मूल उद्देश्य सत्ताकी निरंकुशता को रोकना और उसे न्याय, धर्म तथा जन कल्याण के अधीन रखना है। इस दृष्टि से राजधर्म शासन को अधिकार-आधारित न बनाकर कर्तव्य-आधारित बनाता है, जहाँ शासक स्वयं को प्रजा का सेवक और संरक्षक मानता है। धर्मशास्त्र में शासन-व्यवस्था केसाथ-साथ न्याय-व्यवस्था का भी सन्तुलित अनुशीलन किया गया है। अपराध एवं दण्ड विषय पर भी आचार्यों ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। दण्ड को धर्म का स्वरूप मानते हुए अपराध की गम्भीरता के आधार पर समुचित दण्ड की व्यवस्था की गयी है। राजधर्म के ये सिद्धान्त औचित्य, न्याय तथा दृढ़ नैतिक भित्ति पर आधारित हैं। जिसका लक्ष्य वैयक्तिक एवं सामूहिक जीवन की एक आदर्श आचार-संहिता प्रस्तुत करना था, जिसके सम्यक् अनुपालनसे व्यक्ति का इहलौकिक तथा पारलौकिक मंगल-कल्याण का पथ प्रशस्त होता है।

✦सन्दर्भसूची-

1.महाभारत, कर्णपर्व- 69.58
2.महाभारत (शान्तिपर्व)- 63.27
3.विदुरनीति- 2.25-27
4.महाभारत (शान्तिपर्व)- 90.55
5.मनुस्मृति- 7.18
6.वही- 7.19 व 20
7.महाभारत (शान्तिपर्व)- 63.28
8.रामायण (बालकाण्ड)- सर्ग-25
9.महाभारत (शान्तिपर्व)- 19.14
10.अर्थशास्त्र- प्रथमअधिकरण, प्रकरण-3 अध्याय-5
11.मनुस्मृति- 8.27 व 28
12.वही- 7.198
13.कामन्दकनीतिसार- 9.61
14.महाभारत (शान्तिपर्व)- 69.23
15.अग्निपुराण- 240.1

©Indira Gandhi National Open University

16.मनुस्मृति- 1.180

Volume 5, Issue 1, 2026, p.36- 46, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University